

राजस्थान उच्च न्यायालय

जयपुर बेंच

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 29/2000

राम किशन पुत्र श्री किशोरीलाल, उम्र लगभग 35 वर्ष, निवासी ग्राम व पोस्ट मांढा,
तहसील बहरोड़, जिला अलवर (राजस्थान)

----याचिकाकर्ता

बनाम

- भारत संघ, सचिव, भारत सरकार, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली के माध्यम से।
- पुलिस महानिरीक्षक, उत्तरी क्षेत्र, केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल, नई दिल्ली।
- उप पुलिस महानिरीक्षक, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, अजमेर।
- कमांडेंट, 9 वीं बटालियन, केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल, एडीसी कॉम्प्लेक्स, खुमुलवंग,
राधापुर, त्रिपुरा।

----प्रतिवादी

याचिकाकर्ता(यों) के लिए : श्री आशीष शर्मा

प्रतिवादी(ओं) के लिए : श्री बी. एस. छाबा, उप एस. जी.

श्री मुकेश झुडी के साथ

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन

आदेशरिपोर्ट योग्य11/01/2024 को आरक्षित08/02/2024 को घोषित

1. वर्तमान याचिका निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ प्रस्तुत की गई है, जैसा कि नीचे

उल्लेख किया गया है:-

“(i) याचिकाकर्ता के पक्ष में सभी परिणामी सेवा लाभों के साथ दिनांक
08.06.1999 (अनुलग्नक-12), 04.11.1998 (अनुलग्नक 10) और
16.01.1998 (अनुलग्नक-8) के आक्षेपित आदेशों को रद्द और अपास्त
किया जाए।

“(ii) प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने और उसे सभी
परिणामी सेवा लाभों का तुरंत भुगतान करने और अनुमति देने का निर्देश
देना।

“(iii) कोई अन्य उचित राहत जिसे यह माननीय न्यायालय उचित और

उचित समझे, याचिकाकर्ता के पक्ष में पारित की जाएगी।

(iv) रिट याचिका की लागत भी याचिकाकर्ता के पक्ष में दी जाए।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल (इसके बाद सी.आर.पी.एफ.) में कार्यरत था। 20.09.1997 को, जब याचिकाकर्ता किरनिया, पश्चिम अगरतला, त्रिपुरा में तैनात था, उसकी राइफल यानी एसएलआर (सेल्फ लोडिंग राइफल) से गोलीबारी की घटना हुई, जिसमें देव बहादुर थापा नामक व्यक्ति की मृत्यु हो गई और मालाराम नामक व्यक्ति गंभीर रूप से घायल हो गया। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया। इस पृष्ठभूमि में, 07.11.1997 को प्रथम जांच अधिकारी नियुक्त किया गया। इसके बाद, 10.11.1997 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप-पत्र जारी किया गया। उक्त आरोप-पत्र के माध्यम से, याचिकाकर्ता पर निम्नलिखित आरोप लगाए गए, जो नीचे पुनः प्रस्तुत हैं:-

- "(1) नं. 850852105 लांस नायक रमेशचंद्र ए/9 बाटा कोरिगुलन को दिनांक 20.09.1997 को कैप एरिया कीनिंग पेट्रोल इयूटी करने के लिए नियुक्त किया गया था। उन्होंने अपने दल के साथ मिलकर समय-समय पर अपने लेन में बिक्री ऑर्डर (सिविलियन/स्थानीय) की अनुमति नहीं दी, जो कि ऑर्डर ऑफ ऑर्डर (सिविलियन/स्थानीय) है, जिससे कैरोनबुल एक्ट बनता है। 1949 की धारा 11(1) के अधीनस्थ बल के सदस्य के पास आदेश की आज्ञा है जो अधिनियम की धारा के अंतर्गत दण्डनीय है।
2. नं. 850852105 लांस नायक रमेशचंद्र ए/9 बाटा कोरिगुलन को दिनांक 20.09.1997 को 1800 बजे कैप एरिया की पेट्रोलिंग इयूटी के लिए नियुक्त किया गया। रेस्टोरेंट के समय अपने सैनिकों सहयोगियों के साथ उन्होंने अपने मोबाइल नंबर 790130018 पर ईस्टर ऑर्डर का पालन नहीं किया और बिना किसी के स्थानीय मलयालम मैगले रेस्तरां में रिटेल शराब पिया और साथ ही स्थानीय लोगों के साथ मिलकर काम किया। स्थानीय लोगों ने सैन्य पुलिस को सूचित किया जिसके बाद सैन्य पुलिस के ठिकानों पर छापा मारा गया और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटना से यूनिट की छवि खराब हुई। उक्त अधिनियम कैरोनबुल अधिनियम की धारा 11(1) के अंतर्गत अपराध है। उन्होंने अपने अधिकारी के आदेश की आज्ञा की और फ़्लॉसर आदेश का उल्लंघन किया। यह कृत्य कैरोनबुल अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय है।"
3. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे कहा कि 15.11.1997 को जांच अधिकारी ने जेल का दौरा किया। हालांकि, आरोपों को स्पष्ट किए बिना और/या किसी गवाह को पेश किए/नाम लिए बिना, याचिकाकर्ता से पूछा गया कि क्या वह अपने बचाव में जिरह करना चाहता है। पेश किए गए गवाहों के बारे में जानकारी न होने के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता ने जिरह करने से इनकार कर दिया। 28.11.1997 को तत्कालीन जांच

अधिकारी बदल दिया गया। इसके बाद, उक्त अधिकारी द्वारा पहले से हस्ताक्षरित कार्यवाही की एक प्रति याचिकाकर्ता को दी गई, जिसमें आरोपों का मुकाबला करने और अपना बचाव प्रस्तुत करने के लिए उसे 90 दिनों की छोटी अवधि निर्धारित की गई। इसके बाद, 24.12.1997 को जांच अधिकारी ने 90 दिनों की उक्त अवधि की समाप्ति से पहले अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस पृष्ठभूमि में, दिनांक 16.01.1998 के आदेश-I के तहत, अनुशासन प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया। जमानत पर रिहा होने के बाद, याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी, यानी प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष अपील दायर की। हालाँकि, इसे दिनांक 04.11.1998 के आदेश-II के तहत खारिज कर दिया गया। आगे व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अपीलीय आदेश के विरुद्ध पुनर्विचार याचिका दायर की, जिसे भी दिनांक 08.06.1999 के आदेश-III के तहत खारिज कर दिया गया। तदनुसार, सेवा से बर्खास्तगी की आक्षेपित सजा और उसे बरकरार रखने वाले संबंधित आदेशों से असंतुष्ट होकर, याचिकाकर्ता ने यह याचिका दायर की है।

4. सेवा से बर्खास्तगी की सजा को अनुपातहीन और साथ ही मनमाना/रखरखाव योग्य न मानने के मामले को आगे बढ़ाने के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि अनुशासनहीनता के कथित कृत्य की जांच कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना की गई थी। इस संबंध में, विद्वान वकील ने दावा किया कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को ज्ञापन की सामग्री और याचिकाकर्ता पर लगाए गए आरोपों, आरोपों और गवाहों की सूची और इसके संबंध में प्रदर्शित किए जाने वाले दस्तावेजों के लेखों के बारे में कभी सूचित नहीं किया। यह दावा किया जाता है कि पूर्वोक्त को स्पष्ट किए बिना, याचिकाकर्ता को केवल पूर्व-टाइप किए गए बयानों पर अपने हस्ताक्षर देने के लिए कहा गया था। इसके अलावा, जब जांच अधिकारी बदल दिया गया, तब भी जो अधिकारी बाद में नियुक्त किया गया, उसने याचिकाकर्ता से कभी दोबारा जांच नहीं की।

5. अंत में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने दलील दी कि सेवा से बर्खास्तगी की सजा अनुपातहीन और अधिकार क्षेत्र से बाहर है। उक्त दलील के समर्थन में यह कहा गया कि याचिकाकर्ता पर आरोपों के विवरण वाले ज्ञापन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इसे केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम, 1949 (इसके बाद, 1949 का अधिनियम) की धारा 11 (1) के तहत जारी किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता के आचरण को 'अवज्ञा' के रूप में वर्गीकृत किया गया है। परिणामस्वरूप, यह प्रस्तुत किया गया कि उक्त अधिनियम की

धारा 9 अधिक जघन्य अपराधों से संबंधित है, जबकि धारा 10 कम जघन्य अपराधों से संबंधित है और धारा 11 छोटी सजाओं से संबंधित है। इसलिए, ऐसी परिस्थितियों में जहां आरोपों के विवरण वाले ज्ञापन को धारा 11 (1) के तहत जारी किया गया था, याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने का कोई कारण नहीं था। इसलिए, ऊपर उल्लिखित तर्कों पर भरोसा करते हुए, यह निर्णायक रूप से तर्क दिया गया कि आक्षेपित आदेशों को रद्द कर दिया जाना चाहिए और अलग रखा जाना चाहिए और इसके परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल किया जाना चाहिए।

6. इसके विपरीत, प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने दलील दी है कि मामले के तथ्यों, गवाहों के बयानों, याचिकाकर्ता के बचाव और उससे संबंधित प्रस्तुत दस्तावेजों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, कानून की उचित प्रक्रिया के पूर्ण अनुपालन में आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं। इसलिए, आक्षेपित आदेशों में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उक्त विरोध के समर्थन में, प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने दलील दी कि याचिकाकर्ता की ओर से अनुशासनहीनता का कृत्य एक सरकारी कर्मचारी के लिए अनुचित था, जिसमें उसने जानबूझकर अपने सहकर्मियों पर गोली चलाई, जिसके परिणामस्वरूप देव बहादुर थापा नामक एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई और मालाराम नामक एक व्यक्ति को गंभीर चोट आई। इसके अलावा, यह भी तर्क दिया गया कि विचाराधीन घटना की उचित जांच की गई थी, जिसके संबंध में, याचिकाकर्ता को अपना बचाव तैयार करने के लिए सभी दस्तावेज और बयान विधिवत रूप से दिए गए थे। याचिकाकर्ता को सुनवाई का पर्याप्त अवसर भी दिया गया। इसलिए, जांच करने में कानून की उचित प्रक्रिया के उल्लंघन के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा दी गई दलीलें स्पष्ट रूप से झूठी हैं और इस न्यायालय के समक्ष महज एक विचार के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। इस संबंध में, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि संबंधित घटना के घटित होने के बाद, याचिकाकर्ता ने अपनी इच्छा से, संबंधित अधिकारियों के समक्ष तुरंत अपराध के लिए दोषी होने की दलील दी। इसलिए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दलीलें स्पष्ट रूप से झूठी और मनगढ़ंत हैं। याचिकाकर्ता द्वारा किए गए कृत्य के अनुपात में सेवा से बर्खास्तगी की सजा के समर्थन में, भारत संघ बनाम दिलेर सिंह: सिविल अपील संख्या 1133/2016 में प्रतिपादित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कथन पर भरोसा किया गया। परिणामस्वरूप, ऊपर उल्लिखित दलीलों के आलोक में, यह प्रार्थना की गई कि तत्काल याचिका खारिज कर दी जाए।

7. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों को सुना गया, याचिका के अभिलेख का अवलोकन किया गया तथा बार में उद्धृत निर्णय का अवलोकन किया गया।

8. सर्वप्रथम, गुण-दोष पर चर्चा से पूर्व, यह न्यायालय न्याय के हित में समझता है कि तत्काल याचिका के कारण और विवाद को संक्षेप में नोट किया जाए।

9. गवाहों के बयानों के साथ-साथ याचिकाकर्ता के आपराधिक दोषसिद्धि आदेश दिनांक 02.02.2005 सहित पूरे रिकॉर्ड के सुविचारित अवलोकन पर, यह नोट किया गया है कि 20.09.1997 को याचिकाकर्ता को क्षेत्र-गश्त ड्यूटी के लिए तैनात किया गया था, जिसे एसएलआर संख्या 15366314 सौंपी गई थी। उक्त गश्त ड्यूटी के लिए रवाना होने से पहले, याचिकाकर्ता ने स्वेच्छा से प्रतिबंधित क्षेत्र यानी कैडेटों की आवासीय लाइन में प्रवेश किया, जबकि उसके पास उक्त राइफल थी। उक्त प्रतिबंधित क्षेत्र में, याचिकाकर्ता ने अब दिवंगत देव बहादुर थापा और मालाराम को देखा। याचिकाकर्ता और उक्त व्यक्तियों के बीच तीखी बहस होने पर, याचिकाकर्ता ने अब दिवंगत देव बहादुर थापा को मौखिक चेतावनी जारी की, यह घोषणा करते हुए कि वह उसे गोली मार देगा। हालांकि, यह मजाक में जारी किया गया पाया गया है। इसके बाद, अब दिवंगत देव बहादुर थापा, जो इस बात से अनजान थे कि याचिकाकर्ता के पास राइफल है, ने मजाक में पूछा कि वह उन्हें कैसे मारेंगे। हालांकि, उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब याचिकाकर्ता ने राइफल निकाली और गलती से/बिना इरादे के गोली चला दी, जिससे देव बहादुर थापा की तत्काल मृत्यु हो गई और मालाराम के पेट पर गंभीर चोट आई। इसके बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक और आपराधिक कार्यवाही शुरू हुई। 16.01.1998 के आदेश यानी याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने का मूल आदेश, 04.11.1998 यानी बर्खास्तगी की सजा को बरकरार रखने वाला अपीलीय आदेश और 08.06.1999 यानी पूर्ववर्ती आदेश(ओं) को बनाए रखते हुए पुनरीक्षण आदेश के तहत याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। जबकि, आपराधिक कार्यवाही के अनुसार, याचिकाकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ए के तहत एक अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था।

10. दिनांक 10.11.1997 के आरोप-पत्र का अवलोकन करने पर यह पाया गया कि आरोप-पत्र में गंभीर अपराध के कृत्यों का विवरण दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप देव बहादुर थापा की मृत्यु हो गई तथा मालाराम को गंभीर चोट पहुंची।

11. इसके अलावा, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 15.11.1997 को दिए गए बयानों और संबंधित रिकॉर्ड का आगे अवलोकन करने पर, निम्नलिखित स्वीकृत तथ्य सामने आते हैं, जिनका

उल्लेख नीचे किया गया है:-

11.1 निर्धारित गश्ती इयूटी के लिए प्रस्थान करने से पहले याचिकाकर्ता ने प्रतिबंधित क्षेत्र अर्थात कैडेटों की आवासीय लाइन में बिना अनुमति के प्रवेश किया, जबकि उसके पास उक्त इयूटी के लिए विशेष रूप से जारी की गई राइफल थी।

11.2 देव बहादुर थापा और मालाराम पर जो गोली चलाई गई, वह उसी राइफल से चलाई गई थी, जो याचिकाकर्ता को गश्त के उद्देश्य से दी गई थी।

11.3 इस प्रकार प्राप्त कारतूसों/गोली/अवशेषों की बरामदगी भी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि गोली याचिकाकर्ता को विशेष रूप से सौंपी गई गश्त इयूटी के लिए दी गई राइफल से चलाई गई थी।

इसलिए, इस मोड़ पर, किसी प्रतिबंधित क्षेत्र के परिसर के अंदर, किसी अन्य आधिकारिक कार्य के लिए याचिकाकर्ता को विशेष रूप से सौंपे गए हथियार से गोली चलाने के अपराध के घटित होने के कारकों पर कोई विवाद नहीं है। इसलिए, इस न्यायालय के विचारणीय एकमात्र शर्त यह आकलन करना है कि क्या विवादित आदेश पारित करते समय, विधि की उचित प्रक्रिया का पालन किया गया था या नहीं।

12. अभिलेख का और गहन अध्ययन करने के बाद, यह न्यायालय यह मानना उचित समझता है कि जाँच अधिकारी/अनुशासनात्मक प्राधिकारियों द्वारा विधि की उचित प्रक्रिया का पालन किया गया था। उक्त कथन के समर्थन में, निम्नलिखित टिप्पणियाँ की जाती हैं, जैसा कि नीचे उल्लेख किया गया है:-

12.1 याचिकाकर्ता ने स्वयं अपनी दलीलों में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि न्यायिक हिरासत में रहते हुए याचिकाकर्ता को उपनिरीक्षक टी.एस. बिष्ट द्वारा 10.11.1997 को ज्ञापन दिनांक 05.10.1997 की एक प्रति सौंपी गई थी।

12.2 अनुलग्नक 4, अर्थात् जाँच की कार्यवाही/बयानों की प्रतियों, विशेष रूप से पृष्ठ 39 के अवलोकन पर, जब याचिकाकर्ता से अभियोजन पक्ष द्वारा आधार बनाए गए सभी दस्तावेज़ प्राप्त होने के बारे में पूछा गया, तो उसने स्पष्ट रूप से कहा कि उसे 14.10.1997 को ही सभी आवश्यक दस्तावेज़ विधिवत उपलब्ध करा दिए गए थे। साथ ही, याचिकाकर्ता ने यह भी स्वीकार किया है कि लगाए गए सभी आरोपों को विधिवत पढ़कर सुनाया और समझाया गया था।

12.3 रिकार्ड के अनुसार, 15.11.1997 को याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी के समक्ष कथित अपराध के तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था।

12.4 याचिका के साथ संलग्न अभिलेख, विशेष रूप से अनुलग्नक-5, यह भी दर्शाता है कि याचिकाकर्ता ने विधिवत रूप से इस तथ्य को स्वीकार किया है कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर दिया गया था। इसके अलावा, उससे विशेष रूप से यह भी पूछा गया था कि क्या वह अभियोजन पक्ष के गवाहों से जिरह करना चाहता है, जिससे उसने स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया। अनुलग्नक-5 का प्रासंगिक अंश नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“बल संख्या – 850852105 अभियुक्त लांस नायक रमेशचन्द्र
ई/9 बटा कम्पनी दोराहा सिरकोनी में लिये गये बयान :-

सवाल नं 01 – क्या आप अभियोजन के गवाहों / साक्षियों के दिए गये बयान को ध्यानपूर्वक पढ़े हैं।
जवाब – मैं उपस्थित नहीं था, मगर मुझे दो गवाहों के बयानों की एक प्रति दी गयी है।
सवाल नं 02 – क्या आपको इन गवाहों के द्वारा प्रस्तुत किये गये पूरे-पूरा बयान को समझ में आया।
जवाब – जी हाँ पूरे-पूरा बयान समझ में आया है।
सवाल नं 03 – क्या गवाहों द्वारा दिये गये बयानों एवं रिकार्ड (साक्ष्य) के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण या कोई सबूत प्रस्तुत करना चाहते हैं।
जवाब – जी हाँ, जो प्राप्त हो चुके हैं।
सवाल नं 04 – अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किये गये बयान-ओ-साक्ष्य के अनुसार आपके खिलाफ जो चार्ज / आरोप लगाया गया है।
उसको समझते हैं, यदि हाँ, तो उसमें क्या कहना चाहते हैं।
जवाब – जी हाँ, मुझे चार्ज / आरोप समझ में आ गया है।
सवाल नं 05 – क्या अपने बयान पत्र के लिए कोई साक्ष्य या गवाह पेश करना चाहते हैं।
जवाब – जी हाँ, अपने बयान पत्र के लिए कोई साक्ष्य या गवाह पेश करना चाहता हूँ।
सवाल नं 06 – क्या अपने बयान पत्र में कोई लिखित या गवाह पत्र पेश करना चाहते हैं।
जवाब – मैं अपने बचाव पत्र में कोई कागजात या प्रमाण-पत्र पेश नहीं करना चाहता।”

13. अतः, अनुलग्नक-5 अर्थात् जाँच अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित टाइप किए गए लिखित बयान और अनुलग्नक-4 अर्थात् बयानों की प्रतियों के संचयी अवलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि याचिकाकर्ता ने जाँच अधिकारी द्वारा विभिन्न प्रक्रियात्मक आदेशों का पालन किए जाने की बात विधिवत स्वीकार की है, जो विधिसम्मत प्रक्रिया का पालन दर्शाता है। अतः, इस स्तर पर, याचिकाकर्ता द्वारा इस प्रकार की गई जाँच में प्रक्रियात्मक चूक का दावा करने वाले आधारों को स्वीकार नहीं किया जा सकता, विशेष रूप से क्रमशः अनुलग्नक-4 और 5 में याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं की गई स्वीकारोक्ति के मद्देनजर।

14. इसके अलावा, यह भी उल्लेखनीय है कि विद्वान सत्र न्यायालय ने, दिनांक 02.02.2005 के निर्णय द्वारा, याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू किए गए आपराधिक मुकदमे में,

भारतीय दंड संहिता की धारा 304 ए के अंतर्गत दोषसिद्धि का आदेश पारित किया था। इस आदेश में याचिकाकर्ता की ओर से देव बहादुर थापा और मालाराम की हत्या करने की मंशा न होने का संज्ञान लिया गया था, साथ ही उसकी लापरवाही को भी उजागर किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप देव बहादुर थापा की मृत्यु हो गई और मालाराम को गंभीर चोट आई। दोषसिद्धि आदेश का प्रासंगिक अंश नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“सजा का क्रम

9. दण्ड के प्रश्न पर दोषी का पक्ष सुना गया। उसने न्यायालय से दया की प्रार्थना की।

भारतीय दंड संहिता की धारा 304(ए) के तहत दंडनीय अपराध के लिए सजा दो वर्ष तक की कैद या जुर्माना या दोनों हो सकती है।

राम किशन यादव को 2 (दो) महीने के लिए आर.आई. भुगतना होगा और 2000/- (दो हजार रुपये) का जुर्माना देना होगा, न देने पर 2 (दो) महीने का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा।

रिकार्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि दोषी ने जांच, पूछताछ और परीक्षण की अवधि के दौरान पहले ही 2 (दो महीने) का कारावास काट लिया था और इस प्रकार उक्त अवधि को दोषी को दी गई सजा की अवधि के विरुद्ध सेट किया जाता है।

दोषी को 2000/- (दो हजार रुपये) का जुर्माना अदा करने पर रिहा कर दिया जाएगा, अन्यथा उसे 2 (दो) महीने का कारावास भुगतना होगा।

यदि जुर्माना राशि वसूल की जाती है तो उसे पीड़ित एस/के. माला राम सिंह को दिया जाना चाहिए।

दोषी को निर्णय की एक प्रति निःशुल्क उपलब्ध कराएं।

साथ ही फैसले की एक प्रति जिला मजिस्ट्रेट, पश्चिम त्रिपुरा, अगरतला को भी भेजें।”

15. अंत में, यह न्यायालय यह मानना उचित समझता है कि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उठाया गया तर्क कि सेवा से बर्खास्तगी की सजा असंगत है क्योंकि आरोपों के विवरण वाला ज्ञापन 1949 के अधिनियम की धारा 11(1) के तहत जारी किया गया था जो केवल मामूली दंड से संबंधित है, निम्नलिखित कारणों से स्वीकार नहीं किया जा सकता है:-

15.1 याचिकाकर्ता की कार्रवाई/लापरवाही के कारण देव बहादुर थापा की मृत्यु हो गई तथा मालाराम को गंभीर चोट पहुंची।

15.2 यह कि प्रतिबंधित क्षेत्र अर्थात कैडेटों की आवासीय लाइन में अनाधिकृत प्रवेश का

तथ्य स्थापित एवं निर्विवाद है।

15.3 यह तथ्य कि गोलियां गश्त के लिए याचिकाकर्ता को विशेष रूप से सौंपी गई राइफल से चलाई गई थीं, निर्विवाद है।

16. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिलेर सिंह (सुप्रा) मामले में यह माना है कि 1949 के अधिनियम की धारा 11(1) के अंतर्गत सेवा से बर्खास्तगी का दंड भी शामिल होगा, खासकर जब अनुशासनहीनता के उपरोक्त कृत्य विधिवत सिद्ध हों। प्रासंगिक अंश नीचे पुनः प्रस्तुत है:-

19. विचारणीय मुख्य मुद्दा यह है कि क्या अधिनियम की धारा 11(1) के अंतर्गत बर्खास्तगी का दंड दिया जा सकता है। अब यह विवाद नहीं रहा। **गुलाम मोहम्मद भट (सुप्रा)** मामले में अधिनियम की धारा 11 की व्याख्या करते हुए यह माना गया है:

5. धारा 11 के मात्र अवलोकन से पता चलता है कि यह पूर्ववर्ती धारा में निर्धारित प्रमुख दंडों की तुलना में लघु दंड से संबंधित है। यह निर्धारित करता है कि कमांडेंट या कोई अन्य प्राधिकारी या अधिकारी, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है, अधिनियम के तहत बनाए गए किसी भी नियम के अधीन, फोर्स के किसी भी सदस्य को किसी एक या अधिक दंड दे सकता है, जो अवज्ञा, कर्तव्य की उपेक्षा या अपने कर्तव्य के निर्वहन में लापरवाही या बल के सदस्य के रूप में अन्य कदाचार का दोषी पाया जाता है। उच्च न्यायालय के अनुसार इस धारा के तहत दिए जा सकने वाले एकमात्र दंड रैंक में कमी, जुर्माना, क्वार्टरों तक सीमित रहना और बल में किसी भी विशिष्ट पद या विशेष पारिश्रमिक से हटाना है। हमारी राय में, व्याख्या सही नहीं है, क्योंकि धारा कहती है कि ये दंड निलंबन या बर्खास्तगी के बदले में या उसके अतिरिक्त दिए जा सकते हैं।

6. धारा 11 की उपधारा (1) में खंड (क) से (ड) के पूर्व प्रयुक्त "निलंबन या बर्खास्तगी के स्थान पर या इसके अतिरिक्त" शब्दों से यह पता चलता है कि इसमें उल्लिखित प्राधिकारी दोषी पाए गए बल के सदस्य को बर्खास्तगी या निलंबन का दंड देने के लिए सशक्त हैं और इसके अतिरिक्त या इसके स्थान पर खंड (क) से (ड) में उल्लिखित दंड भी दिया जा सकता है।

और फिर:

7. ...इसलिए यह स्पष्ट है कि धारा 11 केवल उन छोटे दंडों से संबंधित है जो विभागीय जांच में दिए जा सकते हैं और इसे स्पष्ट रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके तहत बर्खास्तगी की सजा निश्चित

रूप से दी जा सकती है, भले ही अपराधी पर धारा 9 या धारा 10 के तहत अपराध के लिए मुकदमा न चलाया गया हो।

20. हम उक्त दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हैं और यह राय देते हैं कि अधिनियम की योजना के अंतर्गत, अधिनियम की धारा 11(1) के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, बर्खास्तगी का दंड दिया जा सकता है। जैसा कि आक्षेपित आदेश से स्पष्ट है, उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष को पलटने के लिए, अखिलेश कुमार (सुप्रा) में दिए गए कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय का विस्तृत उद्धरण दिया है। यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि उस मामले में भी दोषी अधिकारी के विरुद्ध लगाए गए आरोप समान थे। कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अधिनियम, विशेषकर धारा 10(एम) और सीआरपीएफ नियमावली के विभिन्न खंडों का विश्लेषण करते हुए, यह निष्कर्ष निकाला:

विभागीय कार्यवाही के तथ्यात्मक मैट्रिक्स से यह एक स्वीकृत स्थिति है कि रिट याचिकाकर्ता/अपराधी को एक शिविर में तैनात किया गया था। शिविर/लाइनों में इस तरह की तैनाती के नियम के अनुसार संबंधित कार्मिक अपनी इच्छा के अनुसार उस अवधि के दौरान भी स्थानांतरित करने के लिए स्वतंत्र नहीं है जब वह वास्तविक ड्यूटी पर नहीं होता है। एक शिविर का अनुशासन किसी व्यक्ति की कार्यालय में और शिविर के बाहर अन्य स्थानों पर तैनाती की तुलना में पूरी तरह से अलग है। यह सच है कि संबंधित कार्मिक जो शिविर से जुड़े हैं और शिविर में रह रहे हैं उन्हें 8 घंटे की ड्यूटी के रोटेशन से आवंटित किया जाता है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि जब वह सक्रिय ड्यूटी पर नहीं होगा तो उसे पूर्व अनुमति के बिना शिविर के बाहर जाने की अनुमति होगी। जैसा कि पहले ही उद्धृत किया गया है, खंड 7.2 और 6.23 के प्रासंगिक प्रावधान से ऐसा प्रतीत होता है कि शिविर से बिना छुट्टी या अनुमति के अनुपस्थिति गंभीर और गंभीर स्थिति होने पर अपराधी के खिलाफ न्यायिक सुनवाई शुरू करने या अन्यथा विभागीय जांच कराने को आमंत्रित करेगी। इसलिए, विद्वान ट्रायल जज का यह निष्कर्ष कि चूंकि अपराधी/रिट याचिकाकर्ता सक्रिय ड्यूटी पर नहीं था, इसलिए उपरोक्त धाराओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, बर्खास्तगी के आदेश को रद्द करने के लिए इसकी प्रयोज्यता के लिए हमसे अपील नहीं कर रहा है। हालांकि, एक कार्मिक को एक शिविर में तैनात रहने के दौरान अनुशासन बनाए रखने के उपरोक्त प्रावधान से, जिसके लिए कंपनी कमांडर से थोड़े समय के लिए भी शिविर छोड़ने की पूर्व अनुमति की आवश्यकता होती है, हम इस विचार से हैं कि अनुच्छेद नंबर 1 के तहत आरोप साबित हुआ था। अब, सजा की मात्रा के

सवाल पर, अर्थात्, इस तरह के आरोप पर लगाए गए सेवा से बर्खास्तगी, हम इस विचार से हैं कि चूंकि खंड 6.23 के तहत विभागीय जांच शुरू करने का प्रावधान है और निर्णय के अनुसार केवल एक छोटी सजा दी जा सकती है और चूंकि सीआरपीएफ अधिनियम की धारा 10 (एम) उस क्षेत्र में छोटी सजा का मुद्दा प्रदान करती है, हम इस विचार से हैं कि बर्खास्तगी एक बड़ी सजा होने के कारण अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं की जानी चाहिए थी।

8. सभी मुद्दों पर विचार करते हुए, हम अपीलीय प्राधिकारी द्वारा बर्खास्तगी के आदेश के साथ-साथ उसकी पुष्टि के आदेश को रद्द कर रहे हैं और मामले को सेवा विनियमन के तहत अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेज रहे हैं ताकि वह सजा की मात्रा तय कर सके जो कि स्वीकार किए गए कदाचार के आरोप के अनुरूप होगी, जो केवल मामूली सजा को आमंत्रित करता है।

21. उपर्युक्त विश्लेषण से पता चलता है कि खंडपीठ ने स्पष्ट रूप से माना है कि दोषी कर्मचारी, बल का सदस्य होने के नाते, बिना पूर्व अनुमति के शिविर नहीं छोड़ सकता था। इसने यह भी राय दी है कि जब कोई कर्मी शिविर में तैनात होता है, तो वह अपनी इच्छानुसार घूमने के लिए स्वतंत्र नहीं होता, यहाँ तक कि उस अवधि के दौरान भी जब वह ड्यूटी पर नहीं होता है। हालाँकि, जैसा कि स्पष्ट है, खंडपीठ ने यह राय दी है कि बर्खास्तगी को एक बड़ी सजा के रूप में लागू करना अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा नहीं लगाया जा सकता था। उक्त राय **गुलाम मोहम्मद भट (सुप्रा)** के मामले में स्पष्ट रूप से निर्धारित कानून की स्थिति का उल्लेख किए बिना व्यक्त की गई है। इस प्रकार, मूल आधार गलत है। विवादित आदेश में, रिट अदालत ने **अखिलेश कुमार (सुप्रा)** के अंश को पुनः प्रस्तुत करने के बाद यह राय दी है कि विवाद कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय द्वारा कवर किया गया है। यह ध्यान देने योग्य अत्यंत महत्वपूर्ण है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने **गुलाम मोहम्मद भट (सुप्रा)** के निर्णय की सराहना करने का प्रयास भी नहीं किया है। भट (सुप्रा) मामले में, हालाँकि विद्वान प्रथम अपीलीय न्यायाधीश ने इसी पर भरोसा किया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय के तर्क का मुख्य आधार यह था कि कानून में बर्खास्तगी का एक बड़ा दंड दिया जा सकता है। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि उच्च न्यायालय ने बिना किसी विश्लेषण के इस निष्कर्ष को खारिज

कर दिया, बल्कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक अंश को पुनः प्रस्तुत किया, जिसमें गुलाम मोहम्मद भट मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्धारित अनुपात का उल्लेख नहीं किया गया था। इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष पूरी तरह से अस्थिर है।

22. प्रतिवादी के विद्वान वकील ने दलील दी है कि भले ही आरोप साबित हो गए हों, तथ्यात्मक मैट्रिक्स प्राप्त करने में बर्खास्तगी की सजा पूरी तरह से कठोर और अंतरात्मा को झकझोर देने वाली है। उनकी दलील है कि सजा अनुपातहीन है। प्रतिवादी अनुशासित बल का हिस्सा था। वह बिना पूर्व अनुमति के परिसर छोड़कर चला गया, बाजार गया, शराब पी और नागरिकों से झगड़ा किया। यह स्थापित हो चुका है कि उसने बाजार में शराब पी थी और यह भी साबित हो चुका है कि उसने नागरिकों से झगड़ा किया। अनुशासित बल के सदस्य से इस तरह का व्यवहार करने की उम्मीद नहीं की जाती है। दलील, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यह है कि सजा बिल्कुल अनुपातहीन है। आनुपातिकता के परीक्षण को इस न्यायालय ने ओम कुमार और अन्य बनाम भारत संघ: (2001) 2 एससीसी 386, भारत संघ और अन्य में समझाया है। बनाम जी. गणयुथम: (1997) 7 एससीसी 463 और भारत संघ बनाम द्वारका प्रसाद तिवारी: (2006) 10 एससीसी 388। द्वारका प्रसाद तिवारी (सुप्रा) मामले में यह माना गया है कि जब तक अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा लगाया गया दंड न्यायालय/न्यायाधिकरण की अंतरात्मा को झकझोर न दे, तब तक हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है। जब अनुशासित बल का कोई सदस्य अनुशासन से इस हद तक विचलित हो जाता है और ऐसे अप्रिय व्यवहार करता है जिसकी कल्पना नहीं की गई थी, तो यह मानना मुश्किल है कि बर्खास्तगी की जो सजा दी गई है वह न्यायिक अंतरात्मा के लिए अनुपातहीन और झकझोर देने वाली है।

23. हमारा मानना है कि अनुशासित बल के एक सदस्य के रूप में, प्रतिवादी से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह नियमों का पालन करे, अपने मन और भावनाओं पर नियंत्रण रखे, अपनी सहज प्रवृत्ति और भावनाओं की रक्षा करे और अपनी भावनाओं को कल्पना में न बहने दे। यह कोई मामूली विचलन नहीं है जिसके लिए मानव स्वभाव किसी प्रकार की उदारता प्रदान करे। यह सार्वजनिक रूप से किया गया आचरण है जिसने प्राधिकारी को यह सोचने पर मजबूर कर दिया है और, जो सही भी है, कि यह व्यवहार पूरी तरह से अनुशासनहीन है। प्रतिवादी ने, अगर हम खुद को ऐसा कहने की अनुमति दें, तो आत्म-संयम, परिश्रम और इच्छाशक्ति की दृढ़ता को अशोभनीय रूप से दफना दिया है। मैथ्यू अर्नोल्ड की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करते हुए, एक अनुशासित व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है:

हम जब चाहें तब वह आग नहीं जला सकते जो हृदय में बसती है, आत्मा फूंकती है और शांत रहती है, रहस्य में हमारी आत्मा बसती है:

लेकिन अंतर्दृष्टि के घंटों में किए गए कार्य उदासी के घंटों में पूरे

किए जा सकते हैं।
यद्यपि संदर्भ थोड़ा अलग है, फिर भी हमारा मानना है कि इसे पुनः प्रस्तुत करना उचित है।

24. परिणामस्वरूप, अपील स्वीकार की जाती है, उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को रद्द किया जाता है और प्रथम अपीलीय न्यायालय की डिक्री को बहाल किया जाता है तथा प्रतिवादी/वादी द्वारा दायर वाद खारिज किया जाता है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

17. वैसे भी, दिनांक 16.01.1998 यानी मूल आदेश, 04.11.1998 यानी अपील आदेश और 08.06.1999 यानी पुनरीक्षण आदेश के आदेशों के अवलोकन से यह नोट किया गया है कि न्यायिक निकायों ने घोर अनुशासनहीनता के तथ्य और इसके गंभीर परिणामों को ध्यान में रखा है, जिसके परिणामस्वरूप देव बहादुर थापा की मृत्यु हो गई और मालाराम को गंभीर चोट आई। इसके अलावा, न्यायिक निकायों ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि घटना प्रतिबंधित क्षेत्र के भीतर हुई, जहां याचिकाकर्ता का प्रवेश अनधिकृत था, खासकर जब उसे विशेष रूप से गश्त करने का काम सौंपा गया था, जबकि उसके पास एक लोडेड हथियार था। इसके अलावा, गवाहों द्वारा दिए गए बयानों के अलावा, याचिकाकर्ता को गश्त के लिए विशेष रूप से सौंपी गई बंदूक से गोली चलने के तथ्य पर भी विधिवत विचार किया गया है।

18. इस न्यायालय की राय में, विद्वान न्यायनिर्णयन प्राधिकारियों ने सुविचारित आदेश पारित किए हैं, अर्थात् दिनांक 16.01.1998, 04.01.1998 और 08.06.1999 के आदेश, और सभी महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार करने के बाद, एक तार्किक निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। यह न्यायालय उनमें अपनाए गए तर्कों से पूर्णतः सहमत है। आक्षेपित आदेशों में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

19. वैसे भी, यह ध्यान दिया जाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रदर्शित कठोर और लापरवाह आचरण, जो उस समय एक वर्दीधारी अधिकारी था, जिसे राष्ट्र के लोगों को अत्यंत अनुशासन के साथ अपनी सेवाएं प्रदान करने का महान उत्तरदायित्व सौंपा गया था, स्वीकार्य नहीं है। लोगों का विश्वास काफी हद तक ऐसे वर्दीधारी अधिकारियों के कंधों पर टिका होता है, जिन्हें अधिकार और जिम्मेदारी के सिद्धांतों का पालन बड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ करना आवश्यक होता है। यह न्यायालय बिना किसी हिचकिचाहट के यह भी नोट करता है कि सेवा से बर्खास्तगी के आदेशों को बरकरार रखने में हमें रती भर भी

आनंद नहीं मिलता है। हालाँकि, जब आचरण एक वर्दीधारी पद पर सरकारी कर्मचारी के लिए अनुचित हो, और उस आत्मविश्वास के विपरीत हो जिसके साथ उन्हें अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए, तो किए गए कृत्यों और दी गई सजा के बीच संतुलन बनाए रखा जाना चाहिए। अपमानजनक आचरण को माफ नहीं किया जाना चाहिए।

20. परिणामस्वरूप, ऊपर की गई टिप्पणियों के प्रकाश में और दिलेर सिंह (सुप्रा) में प्रतिपादित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कथन पर भरोसा करते हुए, यह न्यायालय तत्काल याचिका को खारिज करना उचित समझता है।

21. परिणामस्वरूप, याचिका खारिज की जाती है। यदि कोई लंबित आवेदन है, तो उसका निपटारा किया जाता है।

(समीर जैन),जे

पूजा /241

"अस्वीकरण- इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी अधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निश्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।"



Tarun Mehra
Advocate